eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 6, Issue 01, Jan 2023

मानवाधिकार एवं भारतीय दलित: एक यथार्थ अवलोकन

[1]**डॉ0 लक्ष्मीना भारती**
[1]प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान, राजकीय महिला महाविद्यालय, फतेहपुर उ0प्र0

Received: 20 Jan 2023, Accepted: 28 Jan 2023, Published with Peer Reviewed on line: 31 Jan 2023

Abstract

विश्व के लगभग सभी समाजों में मानवाधिकारों की संकल्पना मानव उत्पत्ति के साथ ही विद्यमान रही है। चाहे यूनान की बात करें या भारतीय समाज की सबने अपने अपने सामाजिक परिवेश के अनुरूप मानव अधिकारों की संकल्पना रखी। भारत में भी प्राचीन राजनीतिक चिंतकों ने सामाजिक न्याय की अवधारणा पर बल दिया और देश की आजादी के बाद इसी मूल भावना को ध्यान में रखते हुए समाज के हर वर्ग, धर्म, जाति, सम्प्रदाय के लोगों को सामाजिक–आर्थिक न्याय देने के लिए मानवाधिकारों की संकल्पना की गई जिसको यथार्थ रूप देने हेतु भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति निदेशक तत्वों को शामिल किया गया और इसके द्वारा एक ऐसे भारतीय समाज की नींव रखने का प्रयास किया गया जिसमें सभी को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक न्याय मिल सके। इसके लिए संविधान में दलितोत्थान के लिए भी विशेष प्रावधान किया गया और संविधान में लिखित रूप में उनके मानवाधिकारों को स्थान दिया गया। जिससे उनके हक सुरक्षित हो सकें। किन्तु व्यावहारिकता के धरातल पर संविधान सभा के निर्माताओं का सपना अभी भी साकार रूप नहीं ले पाया है। आज भी दलित वर्ग के लोगों का हक पूरी तरह सुरक्षित नहीं हो पाया है। आज भी उन्हें तमाम सामाजिक एवं मानसिक प्रताड़नाओं से गुजरना पड़ता है जिसको दूर किये बिना एक सशक्त भारत राष्ट्र की परिकल्पना को साकार रूप नहीं दिया जा सकता है। अतः आवश्यकता है उन सभी कानूनी प्रावधानों को ठीक ढ़ग से क्रियान्वयन करने की एवं समाज की मानसिक सोच बदलने की ताकि दलित समुदाय को समाज में वह स्थान और मानव गरिमा मिल सके जिसके वे वास्तविक हकदार हैं। इसके लिए सरकार के साथ–साथ हम सबको मिलकर प्रयास करना होगा तभी एक वसुधैव कुटुम्बकम रूपी भारत की संकल्पना साकार हो सकेगी।

<u>मुख्य शब्द</u>– दलितोत्थान, संवैधानिक प्रावधान, क्रियान्वयन, वसुधैव कुटुम्बकम।

Introduction

<u>अध्ययन का उद्देश्य</u> : किसी भी लोकतांत्रिक समाज की नींव उस समाज में व्याप्त सामाजिक–आर्थिक न्याय की संकल्पना पर आधारित होती है। भारत में दलितों के प्रति व्याप्त सामाजिक–आर्थिक अन्याय भारतीय लोकतंत्र के लिए अभिशाप है जिसको दूर करने के लिए समाज में समानता एवं आर्थिक न्याय की स्थापना अति आवश्यक है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से इसी संकल्पना को साकार रूप देने एवं भारतीय समाज में व्याप्त अन्याय को दूर करने का प्रयास किया गया है।

<u>विषय प्रवेश</u> : मानव समाज के इतिहास में मानवाधिकारों की संकल्पना कोई नवीन बात नहीं है अपितु विश्व के प्रत्येक मानव समाज में व्यक्ति की गरिमा तथा व्यक्ति एवं समाज के मध्य सम्बंध को परिभाषित करने का प्रयास अति प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है और उसकी पृष्ठभूमि में व्यक्ति

के अधिकारों का विचार भी अंतर्निहित रहा है। मानवाधिकारों की संकल्पना को ध्यान में रखते हुए ही प्राचीन यूनान में अरस्तू के न्याय का विद्वान्त सामने आया, जिसके अनुसार लाभों का बॅटवारा आनुपातिक रूप से करने की बात की गई। इसी प्रकार प्राचीन भारत में 'महाभारत' के शांतिपर्व में राजा के आचरण और राजस्व के बारे में बताया गया जिससे सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की स्थापना हो सके। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी प्रजा के कल्याण में ही राजा के कल्याण की बात कही गयी और सम्राट अशोक ने अपने कलिंग अभिलेख में प्रजा को संतान की तरह माना है तथा अधिकारियों को जनता पर अत्याचार न करने का निर्देश दिया है। वास्तव में वसुधैव कुटुम्बकम् का सार्वभौमिक सिद्धान्त हमारी संस्कृति का मूल रहा है जिसमें न केवल देश बल्कि सम्पूर्ण विश्व के सभी प्राणियों को एक ही परिवार का सदस्य माना गया है। एक विशाल और जीवंत लोकतंत्र की जीवन यात्रा में आने वाले सभी उतार–चढ़ाव, मोड़ों, सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तनों, आर्थिक विकास, मंदी के सभी संभावित चक्रों से गुजरते हुए भारत ने अपने आपको विश्वमंच पर एक परिपक्व और गतिमान लोकतंत्र तथा तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था के रूप में पूरी तरह स्थापित कर दिया है। उसकी संवैधानिक, राजनीतिक, आर्थिक, न्यायिक तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं ने समय और परिवर्तन की अग्निपरीक्षाओं से गुजर कर अपनी सार्थकता को सिद्ध कर दिया है। आज भारत विश्वपटल पर एक सशक्त लोकतंत्र और उभरता हुआ मजबूत अर्थव्यवस्था वाला देश सिद्ध हो चुका है और हम इस पथ पर तेजी से अग्रसर भी है किन्तु किसी भी राष्ट्र की सर्वांगीण और संतुलित प्रगति के लिए केवल ऊँची आर्थिक विकास दर, प्रति व्यक्ति आय का होना ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक और राजनीतिक न्याय एवं विकास भी अति आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले देशों में मानवाधिकार की व्यवस्था की जाती है क्योंकि इसके बिना मानव का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है।

मानवाधिकार वे न्यूनतम अधिकार है जो प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक रूप से अवश्य प्राप्त होना चाहिए क्योंकि मानव अधिकारों की धारणा मानव गरिमा से जुड़ी हुई है। अतः अधिकार मानव गरिमा को बनाये रखने के लिए आवश्यक है, उन्हें मानवाधिकार कहा जाता है। मानव अधिकारों के प्रकार की बात करें तो मुख्य रूप से इसे दो भागों में बॉटा जा सकता है –

(1) <u>नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार</u> : इन अधिकारों को पहली पीढ़ी का अधिकार भी कहा जाता है। इसके सन्दर्भ में सरकार से उम्मीद की जाती है कि वह ऐसा कोई कृत्य नहीं करेगी जिससे व्यक्ति को सुरक्षा, निजता का अधिकार, उत्पीड़न से स्वतंत्रता, अमानवीय एवं अपमानजनक व्यवहार से स्वतंत्रता का अधिकार, विचार एवं अभिव्यक्ति का अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता तथा आवागमन की स्वतंत्रता एवं मत देने का अधिकार, चुनाव लड़ने एवं निर्वाचित होने का अधिकार, सरकार की सकारात्मक आलोचना का अधिकार जैसे अधिकारों का हनन न होने पाये।

(2) <u>साामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकार</u> : इन अधिकारों के बिना मानव जीवन का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। इसके अंतर्गत–पर्याप्त भोजन, वस्त्र, आवास एवं जीवन के समुचित स्तर का अधिकार, काम का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को संजोये रखने का अधिकार इत्यादि शामिल हैं। इन अधिकारों के संरक्षण हेतु राज्य से अपेक्षा की जाती है क्योंकि ऐसा माना जाने लगा

है कि नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की पूर्ति अति आवश्यक है।

भारतीय संविधान भारत के प्रत्येक नागरिको सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्रदान करने हेतु संकल्पबद्ध है। इसके लिए संविधान में लिखित प्रावधान करते हुए मौलिक अधिकारों एवं राज्य के नीति–निदेशक तत्वों की व्यवस्था की गयी, जिसको सभी भारतीयों पर समान रूप से लागू किया गया है और धर्म, जाति, क्षेत्र, वंश, लिंग या त्वचा के रंग के आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद को अस्वीकार किया गया है। साथ ही समाज के कमजोर वर्गों को विशेष संरक्षण एवं विकास हेतु विशेष प्रावधान किया गया है।

भारत में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग सदियों से शोषित, उत्पीड़ित एवं वंचित रहे हैं और अभी भी विकास की मुख्य धारा में पूरी तरह से समाहित नहीं हैं। देश के विकास एवं सशक्त लोकतंत्र हेतु इन वर्गों का विकास भी अति आवश्यक है। इस हेतु भारतीय संविधान में अनेकों संवैधानिक प्रावधान भी किया गया है। जैसे मूल अधिकार एवं राज्य के नीति–निदेशक तत्व में दिये गये अधिकार इन पर भी समान रूप से लागू किया गया है। इसके अतिरिक्त संविधान के कुछ अधिकार एवं प्रावधान केवल इन्हीं से सम्बंधित है– जैसे–अस्पृश्यता का अंत (अनु0 17) भारतीय संविधान यह सुनिश्चित करता है कि भारत के सभी लोग कानून के समक्ष समान होंगे एवं सभी को कानून का समान संरक्षण मिलेगा। सभी को समान अवसर एवं स्वतंत्रता प्राप्त होगी, सार्वजनिक स्थलों पर बिना विभेद सभी को प्रवेश की अनुमति होगी। संविधान के अनु0 17 में अस्पृश्यता को पूरी तरह समाप्त कर दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया है। इस घृणित प्रथा के कारण अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों को सार्वजनिक जीवन में सहभागिता से वर्षों वंचित रखा गया जिसके कारण इसने उनमें कुंठा, हताशा एवं हीन भावना को जन्म दिया। अनु0 46 राज्य को निर्देश देता है कि वह समाज के असहाय वर्ग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग की शिक्षा एवं अर्थ सम्बंधी हितों की विशेष रूप से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।

संविधान ने अनेक सकारात्मक कदम भी उठाये हैं जिससे इन शोषित वर्गों का कल्याण एवं विकास हो सके। मौलिक अधिकारों के माध्यम से आरक्षण की नीति को लागू किया गया है जिससे सामाजिक न्याय की स्थापना हो सके। अनु0 15(4) के द्वारा राज्य सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए विशेष संस्थाओं में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। अनु0 16(4) के अंतर्गत राज्य के अधीन सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। संविधान के भाग–16 में अनु0 330 एवं 332 में क्रमशः लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए स्थानों में आरक्षण का प्रावधान है। सकारात्मक भेदभाव की यह व्यवस्था उनके समुचित प्रतिनिधित्व हेतु प्रदान किया गया जिस पर संविधान सभा की पूर्ण सहमति थी। साथ ही अनु0 23 में बेगार श्रम का प्रतिषेध किया गया है और अनु0 24 में बालश्रम की मनाही है। इन दोनों कुप्रथाओं का सम्बंध मुख्यरूप से इन जातियों से रहा है। इसलिए यह प्रावधान इनके लिए विशेष रूप से लाभदायक है। यह भी प्रावधान है कि प्रशासन की सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियाँ करने में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सदस्यों के दावों का विशेष ध्यान रखा जायेगा। अनु0 338 में अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग के गठन का प्रावधान है जिससे मानवाधिकारों को

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 6, Issue 01, Jan 2023

सुरक्षा मिल सके। बहुत सारे गैर–सरकारी संगठन भी इनके उत्थान हेतु प्रयासरत है। जिसके चलते इनकी सामाजिक आर्थिक राजनीतिक स्थिति में बहुत महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं। इनमें शिक्षा का संचार होने से वे अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक हुए हैं। उनके रहन–सहन का स्तर भी बदला है। उनके अंदर व्याप्त हीन भावना भी समाप्त हुई है जिससे धीरे–धीरे ही सही किन्तु विकास की मुख्य धारा में वे शामिल हो रहे हैं।

किन्तु ऐसा नहीं है कि उनके मानवाधिकारों का हनन पूरी तरह समाप्त हो गया है। आज भी गाँवों में विशेष रूप से उनके साथ छुआ–छूत का व्यवहार अपनाया जाता है उन्हें ग्रामीण समाज में बराबरी का दर्जा नहीं है, आज भी कई जगहों पर उन्हें मंदिरों में प्रवेश की अनुमति नहीं है। धार्मिक एवं सामाजिक अस्पृश्यता की समाप्ति एवं उसका किसी भी रूप में प्रचलन दंडनीय अपराध घोषित होने के बावजूद भारतीय समाज से यह पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया है। जनवरी 2009 में ओड़िसा के भद्रक जिले के अराड़ी गाँव के मंदिर में राज्य की महिला एवं बाल कल्याण मंत्री प्रमिला मल्लिक जब पूजा–अर्चना करके वापस लोटी तो वहाँ के पुजारियों ने बकायदा उस मंदिर का शुद्धिकरण किया। ओड़िसा में ही केन्द्रपाडा सहित कई ऐसी घटनाएं सामने आ चुकी है जिनमें मंदिर प्रवेश के मामले में दलितों के खिलाफ हिंसात्मक रूप धारण कर लिया। इसी प्रकार आन्ध्र प्रदेश के तिरुपति के विश्व प्रसिद्ध भगवान वेंकटेश्वर मंदिर के प्रशासन ने पहली बार 2008 में अनुसूचित जाति/जनजाति को मंदिर में प्रवेश देने का निर्णय लिया। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय लोकतंत्र में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के धार्मिक स्वतंत्रता का परोक्ष रूप से ही सही वंचित रखा गया है जो सिद्ध करता है कि भारतीय समाज अभी भी मानव मात्र की समानता की भावना को हृदय से स्वीकार नहीं कर पाया है।

निष्कर्ष :– शिक्षा ही किसी समाज का मूल आधार होती है जिससे उस समाज एवं राष्ट्र का विकास होता है। किन्तु भारत में ण्ब्ध्ैण्ज् में शिक्षा का स्तर अभी भी काफी कम है जिसके चलते वे अज्ञानतावश अपने मानवाधिकारों के उल्लंघन का निरंतर सामना कर रहे हैं। इसी कारण केन्द्र एवं राज्य सरकार की सेवाओं में भी उनकी भागीदारी असंतोषजनक है। निजी क्षेत्रों में तो इनका प्रतिनिधित्व और भी कम है। राजनीतिक संस्थाओं में इनकी भागीदारी की बात की जाए तो वहाँ भी इनकी स्थिति संतोषजनक नहीं है। जिसके कारण दलित समुदाय को आजादी के इतने वर्षों बाद भी पूरी तरह से सामाजिक, आर्थिक न्याय नहीं मिल पाया है, उनके मानवाधिकार आज भी पूरी तरह सुरक्षित नहीं है। समय प्रति समय इसका उल्लंघन होता आया है जिसको लागू करने के लिए अभी बहुत प्रयास आवश्यक है। क्योंकि मानवाधिकारों एवं नागरिक स्वतंत्रताओं की रक्षा करना तथा सामाजिक–आर्थिक न्याय की स्थापना एक लोकतांत्रिक शासन का मूल उद्देश्य होता है। आजादी के इतने सालों बाद भी दलितों के साथ न्याय नहीं हो पाया है जिससे समाज में अभी भी पूरी तरह समानता का संकल्प स्थापित नहीं हो पाया है जिससे समाज में अभी भी पूरी तरह समानता का संकल्प स्थापित नहीं हो पाया है जिसका सपना संविधान सभा के लोगों ने देखा था। संविधान में तमाम सकारात्मक प्रावधान किये जा चुके हैं जिससे वह संकल्पना साकार रूप ले सके किन्तु यथार्थ के धरातल पर अभी बहुत काम बाकी है। आज भी धार्मिक स्वतंत्रता का उपभोग इन जातियों के लिए कठिन बना हुआ है। सेवाओं में उनका प्रतिनिधित्व अभी भी न्यायपूर्ण नहीं है। इनकी आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं

©IJARMS JOURNAL, 2023

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 6, Issue 01, Jan 2023

है जिससे अधिकांश दलितों की आबादी जीवन की मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। आदिवासी क्षेत्रों में पुलिस, अर्द्धसैनिक बलों, राज्य की अन्य संस्थाओं तथा साहूकारों एवं अन्य बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा उदारीकरण के नाम पर मानवाधिकारों का खुलेआम उल्लंघन हो रहा है। जिसको नियंत्रित करना अति आवश्यक है। दलितों के मानवाधिकार सुरक्षित करने के लिए उन्हें शिक्षा देने के साथ–साथ समाज की मानसिकता में भी बदलाव लाना आवश्यक है। जब तक हम अपनी मानसिक सोच में परिवर्तन नहीं लायेंगे तब तक संवैधानिक प्रावधानों को जमीनी हकीकत पर लागू करना असंभव होगा। आज भी समाज की सोच ऊँच–नीच के पायदान से ऊपर नहीं उठ पायी है जिससे इन दलितों को सामाजिक–आर्थिक न्याय नहीं मिल पा रहा है।

अतः भारत के सर्वांगीण विकास हेतु समाज के हर वर्ग, हर धर्म, हर जाति के लोगों का सहयोग आवश्यक है और इसके लिए उनके मानवाधिकारों को सुरक्षित करना अति आवश्यक है। आइये हम सब मिलकर यह प्रण करें कि भारत के विकास हेतु हम अपनी मानसिकता में बदलाव लायेंगे और लोगों की मानसिकता को भी व्यापक आयाम देंगे जिससे सभी को समुचित न्याय मिल सके और भारत विश्व पटल पर अपना एक सशक्त मुकाम हासिल कर पाये।

संदर्भ ग्रंथ :

1- एम0ए0 अंसारी : महिला एवं मानवाधिकार, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2007
2- जे0एन0 पाण्डेय : भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2000
3- प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी : भारत में मानवाधिकार, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012
4- डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव : नई सहृस्त्राब्दी में मानवाधिकार के विविध संदर्भ, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010
5- हस्तक्षेप–राष्ट्रीय सहारा– 8 दिस0 2012
6- योजना–अगस्त– 2013
7- सबके भगवान (संपादकीय) जनसत्ता, लखनऊ– 21 जून 2008, पृष्ठ–6
8- हक की जमीन (संपादकीय) जनसत्ता, लखनऊ– 30 अक्टू0 2007, पृष्ठ–6